सोलह कारण भावना परिशीलन

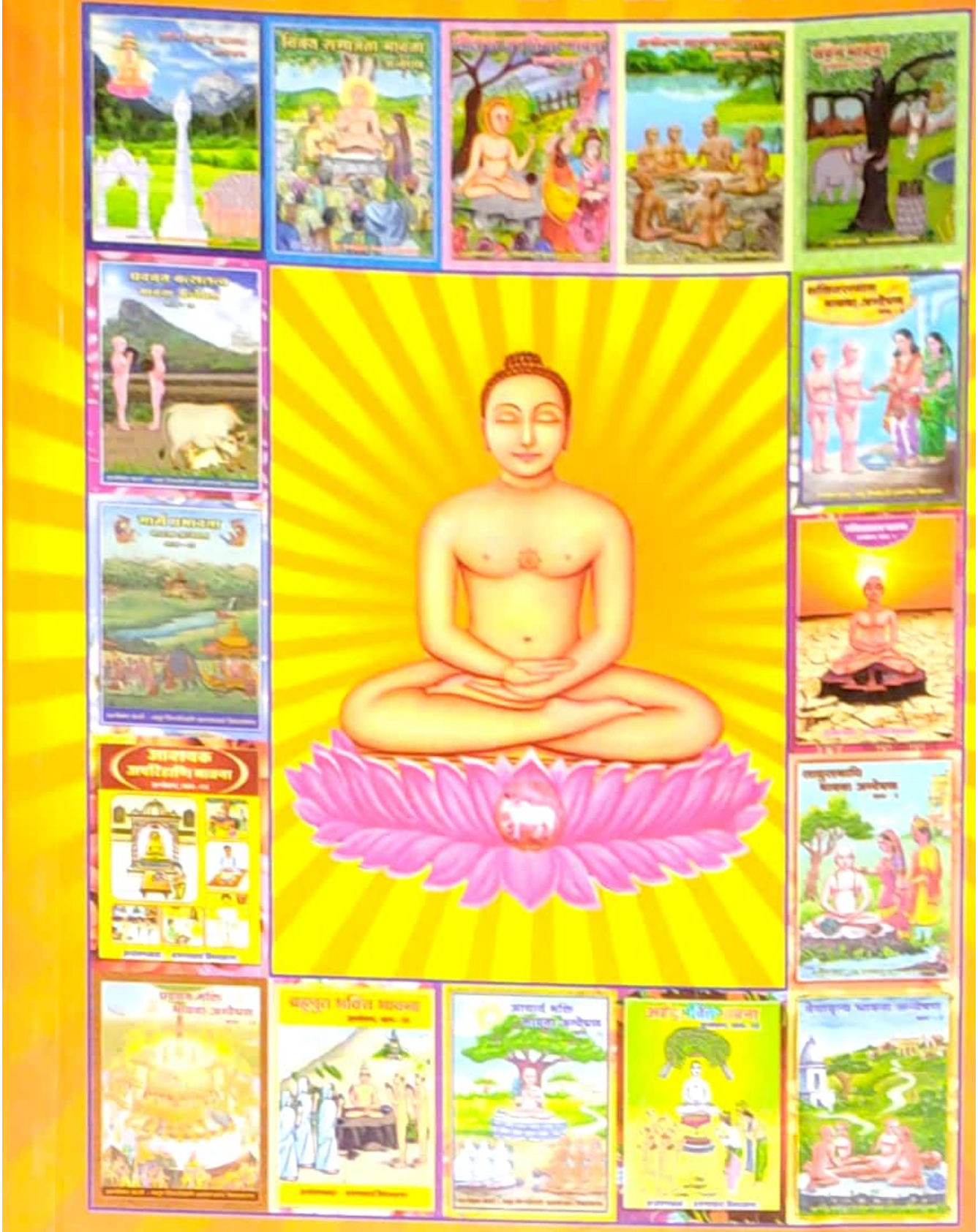

मयूर पिच्छिधारी श्रमणाचार्य विमदसागरजी महाराज

Scanned by CamScanner

Scanned by CamScanner

विषय दर्पण

ज्ञानानुभव स्वर	– उपाध्याय अनुभव सागर
दर्शन विशुद्धि भावना अन्वेषण	– प्राचार्य डॉ.शीतलचन्द जैन
विनय सम्पन्नता भावना अन्वेषण	– डॉ.श्रीमती कल्पना जैन
शीलव्रत अनतिचार भावना अन्वेषण	– डॉ.सनतकुमार जैन
अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावना अन्वेषण	– प्रोफेसर प्रेम सुमन जैन
संवेग भावना का अनुशीलन	– डॉ.राजेश जैन
शक्तितस्त्याग भावना अन्वेषण	– प्रो.श्रेयांशकुमार सिंघई
शक्तितस्तप भावना अन्वेषण	– डॉ.प्रेमचन्द्र रांवका
साधुसमाधि भावना अन्वेषण	– व्याख्याता मधु जैन
साधुसमाधि भावना अन्वेषण	– डॉ.श्रीमती सरोज जैन
वैयावृत्य भावना अन्वेषण	– डॉ.तारा डागा
वैयावृत्य भावना	– डॉ.बबीता जैन
अर्हद्भक्ति भावना अन्वेषण	– प्रो.जिनेन्द्रकुमार जैन
आचार्य भक्ति भावना अन्वेषण	– प्रो.दीनानाथ शर्मा
आचार्य भक्ति भावना अन्वेषण	– डॉ.देव कोठारी
बहुश्रुत भक्ति भावना अन्वेषण	– डॉ.उदयचन्द्र जैन
बहुश्रुतभक्ति भावना	– वीरचन्द्र जैन
बहुश्रुतभक्ति भावना अन्वेषण	– पं.सुरेश जैन मारौरा
आवश्यकापरिहाणि भावना अन्वेषण	– डॉ.महावीरप्रसाद शास्त्री
मार्ग प्रभावना भावना	– डॉ.अनिलकुमार जैन
मार्ग प्रभावना भावना	– डॉ.सत्यनारायण भारद्वाज
मार्ग प्रभावना भावना अन्वेषण	– डॉ.रेखा जैन
प्रवचन वत्सलत्व भावना	– डॉ.योगेशकुमार जैन
प्रवचन वत्सलत्व भावना	– डॉ.गजेन्द्रकुमार जैन
विद्वत संगोष्ठी में शंका समाधान	
भावना अन्वेषण एक अनुशीलन – सत्र	

Scanned by CamScanner

सोलहकारण भावना के अंतर्गत प्रवचन वत्सलत्व भावना का स्वरूप

डॉ. योगेशकुमार जैन
लाडनूं

सोलहकारण गुण करै, हरै चतुरगति-वास।
पाप-पुण्य सब नाशके, ज्ञान-भान परकाश।।

भारतीय तत्त्वचिंतकों ने मानव जीवन की श्रेष्ठता और सार्थकता के उपायों पर गहराई से चिंतन किया है तथा 'दुल्लहे खलु माणुसे भवे' कहकर मानव जन्म की दुर्लभता प्रतिपादित की है। इस दुर्लभ मानव जीवन को उत्कर्ष की ओर निरंतर गतिशील बनाये रखने के लिए जैन धर्म-दर्शन में प्रतिपादित व्रत-नियम का पालन अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि व्रत विहीन जीवन तट रहित नदी के समान उच्छृंखल और स्वतंत्र होता है जो कभी भी प्रलय की स्थिति उत्पन्न कर सकता है। अतः उच्श्रृंखल मन को वश में करने का एकमात्र उपाय व्रत-संयम को धारण कर अनित्यादि तथा दर्शनविशुद्धि आदि सोलहकारण भावनाओं की आराधना करना है। जैन व्रत का अर्थ है स्वेच्छा से मर्यादा को स्वीकार करना। दूसरे शब्दों में व्रत का अर्थ है इच्छा, नियंत्रण, सत्संकल्प आदि। किसी कार्य को करने या न करने का मानसिक संकल्प ही व्रत है।

आराधना :- जिनागम में बारह प्रकार के व्रतों का वर्णन गृहस्थ श्रावक एवं तेरह प्रकार के चारित्र का वर्णन मुनियों की अपेक्षा किया गया है। महाव्रतों का पाक नियमतः ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप इन चारों प्रकार की

Scanned by CamScanner

आराधनाओं का आराधन करता है तथा आराधना का पालन ही तप अर्थात् व्रत है। जिस आत्मा में दर्शनादि परिणाम उत्पन्न हो गये हैं उसका दर्शनादि के विषय में विशेष सातिशय उत्पन्न करने का नाम ही आराधना है। भगवती आराधनाकार कहते हैं कि जिनागम में मुख्यतः दो प्रकार की आराधनाओं का वर्णन किया गया है क्योंकि दर्शन का ज्ञान के साथ तथा चारित्र का तप के साथ अविनाभाव होने से दर्शन आराधना में ज्ञान आराधना का और चारित्र आराधना का अंतर्भाव हो जाता है तथा सम्यग्दर्शन होने पर ही ज्ञानाराधनापूर्वक चारित्राराधना होती है, यथा -

दुविहा पुण जिणवयणे भणिया आराहणा समससेण।
सम्मत्तम्मि य पढमा विदिया य हवे चरितंमि।।

अर्थात् जिस साधक ने ज्ञानावरण, दर्शनावरण और मोह को जीत लिया वह जिन, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तथा वीतद्वेषी कहलाता है। वीतरागी-सर्वज्ञ के वच नहीं जिनवचन कहलाते हैं। इसी जिनवचन/जिनआगम में श्रद्धानविषयक प्रथम दर्शन आराधना और दूसरी चारित्रविषयक चारित्र आराधना का कथन किया गया है। चूँकि दर्शन आराधना में ज्ञान आराधना का अंतर्भाव किया गया है अतः दर्शन की आराधना करनेवाले के नियम से ज्ञानाराधना होती ही है, परंतु ज्ञान की आराधना करनेवाले के दर्शन की आराधना हो भी सकती है और नहीं भी।

श्रद्धा और ज्ञान का अविनाभाव है तथा आत्मा में ज्ञानावरण के क्षयोपशम से उत्पन्न होनेवाले विषयाकार रूप परिणमन को ज्ञान कहते हैं। आराधनाकार के इस तथ्य की मीमांसा करने पर यह स्पष्ट होता है कि यदि आत्मा विषयाकार रूप परिणमन करता है तो विषय की तरह आत्मा भी रूप, रस, गंध और स्पर्शमय हो जाएगा तथा ऐसा मानने पर आत्मा के अरस, अरूप, अगन्ध स्वभाव में विरोध प्राप्त होगा। चूंकि श्रद्धा चैतन्य का धर्म है ज्ञान का नहीं, अतः ज्ञान में स्थित विशुद्धि को भी श्रद्धा नहीं कहा जा सकता।

Scanned by CamScanner

यदि श्रद्धा को ज्ञान का धर्म स्वीकार किया जाये तो क्षायोपशमिक ज्ञान के नष्ट होने पर दर्शन का अस्तित्व भी समाप्त हो जायेगा, क्योंकि जो जिसका धर्म होता है वह उसका स्वरूप भी होता है। अत: धर्मी (ज्ञान) के नष्ट होने पर धर्म (दर्शन) भी नष्ट हो जायेगा, परंतु दर्शन मोहनीय के उदय के बिना दर्शन का अभाव नहीं होता है। तथा दर्शन श्रद्धान को कहते हैं और श्रद्धा अज्ञात विषय या वस्तु में नहीं होती। अत: दर्शन और ज्ञान परस्पर अविनाभाव रूप सिद्ध होते हैं। इसप्रकार दर्शन की आराधना करने पर ज्ञान की आराधना स्वयमेव हो जाती है।

जिस प्रकार दर्शन की आराधना करने पर ज्ञान की आराधना स्वयमेव हो जाती है, उसी प्रकार चारित्र की आराधना करने पर तपाराधना स्वयमेव हो जाती है। इसे ही भगवती आराधनाकार लिखते हैं, कि –

संजममाराहंतेण तओ आराहिओ हवे णियमा।
आराहंतेण तवं चारित्तं होइ भयणिज्जं।।

अर्थात् कर्मों के ग्रहण में निमित्त क्रियाओं के त्याग को संयम कहते हैं और वह चारित्र ही है तथा संयम की आराधना करनेवाले के द्वारा तप नियम से होता है, परंतु तप की आराधना करनेवाले के चारित्र भजनीय है अर्थात् हो भी सकता है और नहीं भी।

मोक्षमार्गी सम्यग्दृष्टि साधक भी यदिर अविरत है अर्थात् उसने विधिपूर्वक कोई व्रत धारण नहीं किये है और हिंसादि विषयों में आसक्त है तो उसका तप करना कार्यकारी नहीं है क्योंकि वह व्यवहार तप के द्वारा कर्मों को सर्वथा नष्ट नहीं कर सकता है। जो संयम से रहित होता है वह प्रति समय नवीन कर्मों का बंध करता रहता है और उसकी मुक्ति नहीं होती है। इस प्रकार मोक्षमार्ग में सर्वत्र चारित्र की ही प्रधानता है। कहा भी है कि –

अहवा चरित्ताराहणाए आराहियं हवइ सव्वं।

Scanned by CamScanner

अर्थात् चारित्र की आराधना में ज्ञान, दर्शन और तप समाहित ही होता है। आगम में वस्तु स्वरूप को समझने के लिए उनके अनेकानेक भेद किये हैं तथा इन्हीं भेदों के द्वारा जीव हित की प्राप्ति और अहित का परिहार करता है, इसे ही चारित्र कहते हैं। चारित्र की आराधना अर्थात् पालन सम्यक श्रद्धा और सम्यक् ज्ञान आधारित ही होती है, क्योंकि असंयत सम्यग्दृष्टि ज्ञान और दर्शन की ही आराधना करता है तथा मिथ्यादृष्टि की आराधना सम्यक ही नहीं है। अतः जो चारित्र की आराधना करता है, उसके शेष सभी आराधनायें स्वतः ही हो जाती है। चारित्र की पूर्णता से साधक मोक्ष की प्राप्ति करता है तथा मोक्ष की प्राप्ति अरिहंत अवस्था के साथ-साथ तीर्थंकर अवस्था विशेष से भी होती है।

जैन कर्म मीमांसा के अंतर्गत नाम कर्म की 93 प्रकृतियों में से एक तीर्थंकर प्रकृति का उल्लेख भी प्राप्त होता है। इस प्रकृति का बंध दर्शनादि सोलहकारण भावनाओं के सेवन से, पालन से अथवा तदनुरूप आचरण करने से ही बंधती है।

सोलहकारण भावना – इन भावनाओं के नामों का उल्लेख आचार्य उमास्वामी ने तत्त्वार्थसूत्र में किया है –

दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नताशीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगौ संवेगौ शक्तिस्त्यागतपसी साधुसमाधिवैयावृत्यकरणमर्हदाचार्य-बहुश्रुत प्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणि-मार्ग प्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थंकरत्वस्य।।

1.दर्शन विशुद्धि 2.विनय संपन्नता 3.शीलव्रतेष्वनतिचार 4.अभीक्ष्णज्ञानोपयोग 5.संवेग 6.शक्तितः त्याग 7.शक्तितः तप 8.साधुसमाधि 9.वैयावृत्तकरण 10. अर्हतभक्ति 11.आचार्य भक्ति 12.बहुश्रुत भक्ति 13. प्रवचन भक्ति 14. आवश्यकापरिहाणि 15.मार्ग प्रभावना 16. प्रवचनवत्सलत्व। ये सोलहकारण भावनाएँ तीर्थंकर प्रकृति के

Scanned by CamScanner

आस्रव का कारण है। तात्पर्य यह है कि इन सोलह भावनाओं के स्वरूप के अनुरूप जो आचरण करता है वह इस आचरण के पुण्य स्वरूप तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर सकता है अथवा भविष्य में वह तीर्थंकर बनकर लोक का कल्याण करते हुये मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

प्रवचन वत्सलत्व भावना का स्वरूप

साधर्मियों के प्रति प्रीति रखना ही वात्सल्य की भावना है। सामान्यत: साधक वात्सल्य और भक्ति को एक भी मान लेते हैं तथा भक्ति को ही वात्सल्यभाव की संज्ञा दे देते हैं परन्तु वात्सल्य और भक्ति में अंतर है। वात्सल्य छोटे-बड़े सभी साधर्मियों के प्रति होता है, परंतु भक्ति अपने से बड़ों के प्रति होती है। श्रुत और श्रुत के धारण करनेवाले दोनों के प्रति वात्सल्य रखना ही प्रवचन वात्सल्य है। यह शुभराग भाव है, अत: आस्रव होने से बंध का कारण है।

प्रवचन वत्सलत्व भावना के संदर्भ में कहा गया है कि जिस प्रकार बछड़े में गाय की प्रीति होती है, उसी प्रकार साधर्मियों के परस्पर में प्रीतिभाव होना प्रवचन वात्सल्य है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार गाय बिना किसी स्वार्थ के अकृत्रिम मोह/स्नेह करती है, उसी प्रकार साधर्मियों को देखकर नि:स्वार्थ स्नेह से ओतप्रोत हो जाना तथा चित्त धर्मस्नेह से आर्द्र हो जाना ही प्रवचनवत्सलत्व है। साधर्मियों से स्नेह ही प्रवचन स्नेह कहलाता है।

पंचाध्यायी में वात्सल्य को परिभाषित करते हुये लिखा है कि -

भक्तिरनौद्धत्यं वाग्वपुश्चैतसां शमात्।
वात्सल्यं तद्गुणोत्कर्षहेतवे सोद्यतं मन:।।

अर्थात् दर्शनमोहनीय का उपशम होने से मन, वचन, काय के उद्धतपने के अभाव को अर्थात् मन-वचन-काय की विरूपता के अभाव को तथा वीतरागता के प्रति श्रद्धा के व्यवहार को भक्ति कहते हैं। वीतरागी के गुणों के

Scanned by CamScanner

उत्कर्ष के लिए तत्पर मन को अथवा मन के भाव को वात्सल्य कहते हैं।

मूलाराधना के अनुसार

चादुवण्णे संघे चदुगदिसंसारणित्थरणभूदे।
वच्छल्लं कादव्वं वच्छे गाव जहा गिद्धी।।

अर्थात् चतुर्गतिरूप संसार से तिरने के कारणभूत मुनि-आर्यिकादि चार संघ में, बछड़े में गाय की प्रीति की तरह प्रीति करना चाहिए। यही वात्सल्य गुण है।

भगवती आराधनाकार लिखते हैं कि -

धर्मस्थेषु मातरि पितरि भ्रातरि वानुरागो वात्सल्यम्।

अर्थात् धार्मिक लोगों पर और माता, पिता एवं भ्राता पर प्रेम रखना वात्सल्य गुण है।

चरित्रसार के अनुसार वात्सल्य अंग का स्वरूप -

सद्यः प्रसूता यथा गौर्वत्से स्निह्यति।
तथा चातुर्वण्ये संघेऽकृत्रिमस्नेहकरणं वात्सल्यतम्।।

अर्थात् जिस प्रकार तत्काल प्रसूता गाय अपने जन्मे बच्चे से प्रेम करती है, उसी प्रकार चार प्रकार के संघ पर अकृत्रिम या स्वाभाविक प्रेम करना वात्सल्य अंग कहा जाता है।

कार्तिकेयानुप्रेक्षाकार स्वामी कार्तिकेय वात्सल्य गुण के संदर्भ में लिखते हैं कि -

जो धम्मिएसु भत्तो अणुचरणं कुणदि परमसद्धाए।
पिय वयणं जप्पंतो वच्छल्लं तस्स भव्वस्स ।।

अर्थात् जो सम्यग्दृष्टि जीव प्रिय वचन बोलता हुआ अत्यंत श्रद्धा से धार्मिक जनों में भक्ति रखता है तथा उसके अनुसार आचरण करता है, उस

Scanned by CamScanner

उत्कर्ष के लिए तत्पर मन को अथवा मन के भाव को वात्सल्य कहते हैं।

मूलाराधना के अनुसार

चादुवण्णे संघे चदुगदिसंसारणित्थरणभूदे।
वच्छल्लं कादव्वं वच्छे गाव जहा गिद्धी।।

अर्थात् चतुर्गतिरूप संसार से तिरने के कारणभूत मुनि-आर्यिकादि चार संघ में, बछड़े में गाय की प्रीति की तरह प्रीति करना चाहिए। यही वात्सल्य गुण है।

भगवती आराधनाकार लिखते हैं कि -

धर्मस्थेषु मातरि पितरि भ्रातरि वानुरागो वात्सल्यम्।

अर्थात् धार्मिक लोगों पर और माता, पिता एवं भ्राता पर प्रेम रखना वात्सल्य गुण है।

चरित्रसार के अनुसार वात्सल्य अंग का स्वरूप -

सद्यः प्रसूता यथा गौर्वत्से स्निह्यति।
तथा चातुर्वण्ये संघेऽकृत्रिमस्नेहकरणं वात्सल्यतम्।।

अर्थात् जिस प्रकार तत्काल प्रसूता गाय अपने जन्मे बच्चे से प्रेम करती है, उसी प्रकार चार प्रकार के संघ पर अकृत्रिम या स्वाभाविक प्रेम करना वात्सल्य अंग कहा जाता है।

कार्तिकेयानुप्रेक्षाकार स्वामी कार्तिकेय वात्सल्य गुण के संदर्भ में लिखते हैं कि -

जो धम्मिएसु भत्तो अणुचरणं कुणदि परमसद्धाए।
पिय वयणं जप्पंतो वच्छल्लं तस्स भव्वस्स।।

अर्थात् जो सम्यग्दृष्टि जीव प्रिय वचन बोलता हुआ अत्यंत श्रद्धा से धार्मिक जनों में भक्ति रखता है तथा उसके अनुसार आचरण करता है, उस

Scanned by CamScanner

भव्य जीव के वात्सल्य गुण कहा है।

द्रव्यसंग्रह के टीकाकार व्यवहारनय की अपेक्षा से वात्सल्य अंग को परिभाषित कहते हुये लिखते हैं कि –

बाह्याभ्यन्तररत्नत्रयाधारे चतुर्विधसंघे वत्से धेनुवत्पंचेन्द्रियविषयनिमित्त पुत्रकलत्रसुवर्णादि-स्नेहवद्धां यदकृत्रिमस्नेहकरणं तद्व्यवहारेण वात्सल्यं भण्यते।

अर्थात् बाह्य और अभ्यंतर रत्नत्रय को धारण करनेवाले मुनि, आर्यिका, श्रावक तथा श्राविकारूप चारों प्रकार के संघ में, गाय की बछड़े में प्रीति के समान पांचों इन्द्रियों के विषयों के निमित्त पुत्र, स्त्री, सुवर्ण आदि में जो स्नेह रहता है, उसके समान स्वाभाविक स्नेह करना, व्यवहारनय की अपेक्षा से वात्सल्य गुण कहा गया है।

वात्सल्य अंग में दासत्वभाव की भावना को बताते हुए पंचाध्यायीकार लिखते हैं कि –

वातसल्यं नाम दासत्वं, सिद्धार्हद्विम्बवेश्वमसु।
संघे चतुविधे शास्त्रे स्वामिकार्येसुभृत्यवत्।।

अर्थात् स्वामी के कार्य में उत्तम सेवक की तरह सिद्ध प्रतिमा, जिनबिम्ब, जिनमंदिर, चार प्रकार के संघ में और शास्त्र में जो दासत्व भाव रखता है, वही सम्यग्दृष्टि का वात्सल्य नामक अंग या गुण है। यहाँ दासता से तात्पर्य गुलामी से न होकर उपरोक्त के प्रति नि:शंकभाव से है।

वात्सल्यभाव का निश्चयलक्षण –

आचार्य कुन्दकुन्द देव समयसार में वात्सल्य अंग के निश्चय लक्षण को परिभाषित करते हुये लिखते हैं कि –

Scanned by CamScanner

जो कुणदि वच्छलत्तं तियेह साहूण मोक्खमग्गम्मि।
सो वच्छलभावजुदो सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो।।

अर्थात् जो चेतयिता मोक्षमार्ग में स्थित सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररूप न साधकों या साधनों के प्रति वात्सल्य करता है, वह वात्सल्यभाव से युक्त म्यग्दृष्टि जानना चाहिए।

इस संदर्भ में राजवार्तिककार लिखते हैं कि –

जिनप्रणीतधमामृते नित्यानुरागता वात्सल्यम्।

अर्थात् जिन प्रणीत रत्नत्रय धर्म रूपी अमृत के प्रति नित्य अनुराग रना वात्सल्य है। इसी प्रकार भगवती आरधना में भी कहा है कि रत्नत्रय र्म में आदर करना निश्चय से वात्सल्य अंग है।

आचार्य अमृतचन्द्र पुरुषार्थसिद्धयुपाय में वात्सल्य अंग का लक्षण खते हुए कहते हैं कि –

अनवरतमहिंसायां शिवसुखलक्ष्मीनिबन्धने धर्मे।
सर्वेष्वपि च सधर्मिषु परमं वात्सल्यमालम्ब्यम्।।

अर्थात् मोक्ष सुख की सम्पदा के कारणभूत जैन धर्म में, अहिंसा में ौर समस्त ही उक्त धर्मायुक्त साधर्मी जनों में निरंतर उत्कृष्ट वात्सल्य व प्रीति ो अवलंबन करना चाहिए।

द्रव्यसंग्रहकार निश्चय वात्सल्य अंग का लक्षण इस प्रकार लिखते हैं–

नेश्चयवात्सल्यं पुनस्तस्यैव व्यवहारवात्सल्यगुणस्य सहकारित्वेन र्मे दृढत्वे जाते सति मिथ्यात्वरागादिसमस्तशुभाशुभबहिर्भावेषु ीतिं त्यक्त्वा रागादिविकल्पोपाधिरहितपरमस्वास्थ्यसंवित्तिसंजात -सदानन्देकलक्षणसुखामृतरसास्वादं प्रति प्रीतिकरणमेवेति सप्तमांगं व्याख्यातम्।

Scanned by CamScanner

अर्थात् पूर्वोक्त व्यवहार वात्सल्य गुण के सहकारीपने से जब धर्म में दृढ़ता हो जाती है, तब मिथ्यात्व, रागादि समस्त शुभ अशुभ बाह्य पदार्थों में प्रीति छोड़कर रागादि विकल्पों की उपाधि से रहित परमस्वास्थ्य के अनुभव से उत्पन्न सदा आनन्दरूप सुखमय अमृत के आस्वाद के प्रति प्रीति का करना ही निश्चय वात्सल्य है।

इस प्रकार जिनागम में वातल्य अंग अथवा भाव का विवेचन किया गया है। इस संगोष्ठी का केन्द्रबिंदु दर्शनविशुद्धि आदि सोलहकारण भावनाओं का विवेचन है तथा मेरा प्रतिपाद्य विषय प्रवचन वत्सलत्व भावना का प्रतिपादन है।

प्रवचन वत्सलत्व भावना के लक्षण को प्रतिपादित करते हुये सर्वार्थसिद्धिकार लिखते हैं कि –

वत्से धेनुवत्सधर्माणि स्नेहः प्रवचनवत्सलत्वम्।

अर्थात् जैसे गाय बछड़े पर प्रीति रखती है उसी प्रकार साधर्मियों पर स्नेह रखना प्रवचनवात्सल्य है। राजवार्तिककार प्रवचन वात्सल्य के स्वरूप को बताते हुये कहते हैं कि गाय और बछड़े के स्नेह को भांति साधर्मी जनों में स्नेह रखना प्रवचन वात्सल्य है।

धवलाकार कहते हैं कि –

तेसु अणुरागो आकंखा ममेदंभावो पयवणवच्छलदाणाम।

रत्नत्रयधारी साधकों के प्रति जो अनुराग, आकांक्षा अथवा ममेदं बुद्धि होती है, वही प्रवचन वात्सल्यता है।

सामान्यतः कहा जाता है कि दर्शनविशुद्धि आदि सोलहकारण भावनाओं के भाने से तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है, परंतु धवलाकार कहते हैं कि केवल प्रवचन वत्सलत्व भावना के भावन से भी तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो सकता है। वे कहते हैं कि –

Scanned by CamScanner

तीए तित्थयरकम्मं बज्झइ। कुदो। पंचमहाव्वदादि-आगमत्थविसयसुक्कट्ठाणुरागस्स दंसणविसुज्झदादीहि अविणाभावादो।

अर्थात् एक मात्र प्रवचन वात्सल्य से ही तीर्थंकर नामकर्म का बंध हो जाता है, क्योंकि पंचहाव्रतादि रूप आगमार्थ विषयक उत्कृष्ट अनुराग का दर्शनविशुद्धतादिकों के साथ अविनाभाव है। अतः वीतराग सर्वज्ञ की वाणी का सेवन निरंतर करना चाहिए जिससे रत्नत्रय के स्वरूप को जीवन में साधकर स्वयं परम विशुद्धि को प्राप्त किया जा सकता है। इस परम विशुद्धि के साथ ही साधक तीर्थंकरादि पद को भी प्राप्त कर लेता है। इसी संदर्भ में सर्वार्थसिद्धिकार लिखते हैं कि सोलहकारण भावनाओं का पृथक्-पृथक् चिंतन भी किया जाये तो भी ये तीर्थंकर नामकर्म के आस्रव के कारण हैं और समुदाय रूप से भी सबका चिंतन किया जाये तो भी ये तीर्थंकर प्रकृति के बंध का कारण सिद्ध होती है। चारित्रसारकार इस संदर्भ में लिखते हैं कि प्रत्येक भावना शेष पंद्रह भावनाओं की अविनाभावी है क्योंकि शेष पंद्रहों के बिना कोई भी एक नहीं हो सकती।

कुरलकाव्यकार कहते हैं कि वात्सल्यधर्म रहित साधक की साधना निरर्थक है। वे लिखते हैं कि -

अस्थिहीनं यथा कीटं सूर्यो दहति तेजसा।
तथा दहति धर्मश्च प्रेमशून्यं नृकीटकम्।।

अर्थात् अस्थिहीन कीड़े को सूर्य जिस तरह जला देता है उसी तरह धर्मशीलता उस मनुष्य को जला देती है जो मनुष्य प्रेम नहीं करता। यहाँ प्रेम से तात्पर्य साधर्मी वात्सल्य से एवं धर्मशीलता से तात्पर्य संयम की भावना से है।

कवि टेकचन्द्र कृत सोलहकारण भावना विधान में प्रवचन वत्सलत्व भावना का स्वरूप इस प्रकार वर्णित है -

Scanned by CamScanner

तिणकी वाणी प्रवचन जग में सार है,
करुणासागर सोई करत भव पार है।
याको वत्सल भाव प्रीति मन लाय है,
सो इहां प्रवचन थाप भावना भाय है।।

इस प्रकार संपूर्ण विधान में जिनवचनों को जो कि शास्त्र के रूप में उपलब्ध हैं उन्हें सर्वोपरि तथा महान उपकारक मानकर उनकी श्रद्धापूर्वक पूजा करना चाहिए। यहाँ पूजा से तात्पर्य केवल द्रव्य अर्पण से नहीं है, अपितु जिनवचनों को मन-वचन-काय से आदरपूर्वक हृदय में स्थापित करने से है। यहाँ यह भी कहा गया है कि जो साधक जिन वचनानुकूल आचरण स्वयं करता है तथा अन्य साधकों को भी जिन वचन सुनाता है अथवा जिनके पास शास्त्र उपलब्ध नहीं है उनको शास्त्र उपलब्ध कराता है, स्वयं शास्त्रों का प्रणयन करता है, प्रतिलिपि करता है अथवा करवाता है तथा जो जिनवचनों की सदा विनय करता है, वह साधक भी प्रवचन वत्सलत्व भावना का ही सेवन करता है।

कहा भी है कि -

अंग इन आदि बहु विनय विधि ठानिए,
प्रीत अति अन्तरै भक्ति शुभ आनिए।
जान जिनवानि आदर विनय लाइये,
भाव प्रवचनवात्सल्य जज गाइये।।

एही सोलह भावना, सहित धरै व्रत जोय।
देव-इन्द्र-नर-वंद्य-पद, द्यानत शिव पद होय।।

●●●

★ काम को निष्काम करनेवाला है उत्तम ब्रह्मचर्य।
★ छल भाव हेय है और वात्सल्य भाव उपादेय है।
★ वात्सल्य भाव श्रावक व साधु दोनों जनों का धर्म है।

Scanned by CamScanner